

भक्ति का श्रृंगार



लेखक

मानस तत्त्वान्वेषी

पं० श्री रामकुमार दासजी महाराज

संस्थापक श्रीराम ग्रंथागार

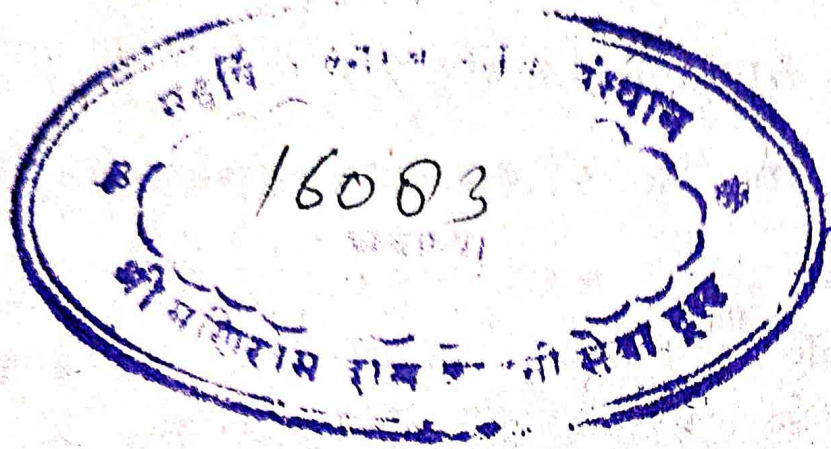
मणि पर्वत, श्री अयोध्या

प्रकाशक

पं० कपीन्द्र दास रामायणी

बड़ी छावनी श्री अयोध्याजी

भक्ति का श्रृंगार



लेखक

मानस तत्त्वान्वेषी

पं० श्री रामकुमार दासजी महाराज

संस्थापक श्रीराम ग्रंथालय

मणि पर्वत, श्री अयोध्या

प्रकाशक

कपीन्द्र दास रामायणी

बड़ी छावनी श्री अयोध्याजी

प्रथम संस्करण २०३८]

[सेवा पुर्नमुद्रणार्थ २ रु० ५० पैसे

श्रियः श्रियै नमः

जाको चण्ड अखण्ड जश व्यापि ,रह्यो ब्रह्मड ।

सब जग की रक्षा करत सो वैष्णवी त्रिदण्ड ॥

मानस पीयूष के आरम्भ काल से ही मैं लेख देता आया रहा । पीछे—
समान-मणि “प्रेम सन्देश” “कल्याण” एवं नाम माहात्म्यादि सार्वजनिक
तथा समन्वय “श्रेयः, रामानन्द सन्देश” “विरक्त” एवं “विवेक रश्मि”
आदिक अनेक साम्प्रदायिक पत्रों में मेरे लेख यदा-कदा छपते रहे । वे लेख कई सौ
हैं । कई बड़ी-बड़ी पुस्तकें भी हैं । अब हाथ काँपने के कारण लिख नहीं पाता ।
कोई लिखने वाला पास रहता है तो कभी-कभी बोलकर नया लेख लिखा देता
हूँ । अनेक प्रेमी मित्रों एवं शिष्यों के आग्रह से प्रकाशक मिलने पर उन्हीं लेखों
को छोटी-छोटी पुस्तिका के रूप में दे देता हूँ । मेरे परम प्रिय छात्र श्री कपीन्द्र
दास रामायणी श्री अयोध्याजी “भक्ति का शृंगार” प्रकाशन कर रहे हैं उन्हें
मेरा आशीर्वाद है ।

भगवद्भागवतानुचरः

पं० राम कुमार दासः

भक्ति का शृंगार

तमो नित्यामन्दे निखिलनिगमाधारनिलये,

विधाने विज्ञाने विधिविभवविस्मापनकरे ।

कलापूर्णं तूर्णं रघुपति पदाम्भोज मधुपे,

ममैषा विश्लेषा परमरतिरेखाऽस्तु भरते ॥

गोस्वामी श्री नामास्वामी (श्री नारायणदासजी) का भक्त माल भक्तिशास्त्र का एक अद्भुत एवं अपूर्व ग्रन्थ है परन्तु वह किसी भी प्राचीन सूत्र ग्रन्थ से कम कठिन नहीं है किन्तु गौड़ीय संत श्री मनोहर दास जी के शिष्य श्री प्रियादास जी ने उस पर कवित्त बद्ध टीका करके उसे कुछ सरल बना दिया है। आठ कवित्तों में टीकाकार की भूमिका है, भूमिका में भी भक्ति के अनेक ज्ञातव्य एवं कर्तव्य रहस्यों का ही वर्णन है। भूमिका के “भक्तिस्वरूप वर्णन” नामक तीसरे कवित्त में प्राकृत रानियों के शृंगार की उपमा देकर श्री भक्ति महाराणी के अद्भुत शृंगार का वर्णन किया है। उस कवित्त को यहाँ उद्धृत करके शब्दार्थ एवं उसकी किंचित् व्याख्या मात्र करता हूँ। महर्षि शांडिल्य ने—‘सा परानुरक्ति रौश्वरे !’ (शांडिल्य सूत्र २) ईश्वर में दृढ़ अनुराग होना भक्ति है—लिखा है उस भक्ति की शोभा वृद्धयर्थ ही प्रस्तुत पद्य में वर्णित साधनों का प्रयोजन है। शोभा-वृद्धि शृंगार से होती है, एतदर्थ यहाँ साधनों को शृंगार का अवयव वर्णन करके दिखाया गया है कि भक्ति तो भगवान की प्रिया रानी ही है संसार में तो देखा सुना जाता है कि एक प्राकृतरानी (नायिका) का भी शृंगार सविधि होता है, अपना शृङ्गार देखकर रानी प्रसन्न हो शृङ्गारी को पुरस्कार (इनाम) देती है। लोक में नायिका के शृङ्गार के समय दासी गण क्रमशः फुलेल उबटन भगाकर (क्रीड़ादि में पसीने द्वारा होने वाली) शरीर की मैल को छुड़ाकर, पुगन्धित जल से स्नान करा, देह पोछ, सुवस्त्र पहिना, इत्र लगा, पद से कण्ठ पर्यन्त अनेक भूषण पहिना, कण्ठफूल और नथ (आरोप्याभूषण) पहिना कर नेत्रों में अंजन-सुर्मा लगाकर तब मुख में पान की बीरी देती है (यही द्वादश शृङ्गार

है) इस प्रकार अलंकृत करके तब नायक के पास (रंगभवन में) ले जाती हैं तो नायक प्रसन्न होकर दासियों के गुणों की बढ़ायी करते हुये मुँह माँगा पुरस्कार देता है। यदि कोई सुशीलादासी संकोचवश कुछ भी न माँगे तो नायक उसे स्वेच्छा से अपने को प्रिय लगने वाली वस्तु उसे देता है। वैसे यहाँ उपासक की मति द्वारा धीरोदात्त गुणान्वित दिव्यातिदिव्य नायक श्री हरि की परम प्रिया अप्राकृत (दिव्या) नायिका महाराणी श्री भक्ति देवी का द्वादश शृङ्गार निम्न कवित्त में वर्णन किया है। यद्यपि श्री भक्ति महारानी तो निराकार हैं परन्तु प्रस्तुत पद्योक्त मानसिक शृङ्गार करने से साकार रूपेण श्री हरि प्राप्त होते हैं।

मूल कवित्त

श्रद्धाई फुलेल औ उबटनों श्रवन कथा
मैल अभिमान अंग अंगनि छुड़ाइये ।
मनन सुनीर अन्हवाइ अँगुछाइ दया
नवनि बसन प्रन सौधो लै लगाइये ॥
साभरण नाम-हरि-साधु सेवा कर्ण फूल
मानकी सु नथ संग अंजन बनाइये ।
भक्ति महारानी को शृङ्गार चारु बीरी
चाह रहै जो निहारि लहे लाल प्यारी गाइये ॥

शब्दार्थ—

श्रद्धाई —(भगवद्भागवद्गुरु और हरि नाम में) निष्ठा (फुलेल = सुगन्धित तैल) उबटन = पुगन्धित औषधियुक्त मर्दनीय लेप । मनन = सुनी हुई वस्तु (भगवद्भागवच्चरित) का सततचिन्तन । अँगुछाना = स्नान के बाद कपड़े से देह का पोछना । दया = जीवमात्र पर स्वाभाविक-अकारण-निस्स्वार्थ कृपा-करुणा से दूसरों के दुःख निवारण की इच्छापूर्वक उपकार करना । नवनि = नम्रता । बसन = वस्त्र । प्रन = (नित्य नियम की) प्रतिज्ञा । आभरण = आक्षेप्य गहने । सौधो = इत्र । चारु = सुन्दर । बीरी = पान का बीड़ा । चाह = उत्कण्ठा—लालसा । संग = सत्संग । निहारि = देखकर । रहै = छकि जाय । लाल = भगवान् श्याम सुन्दर । प्यारी = श्री भक्ति महारानी (श्री रघुवीरहि भक्ति पियारी) । गाइये = गान किया जावे अर्थात् उस बुद्धि को भगवान् दासी कह कर गावें सम्बोधित करें) तात्पर्य वह उपासक श्री मुख से दास की पदवी प्राप्त करे ।

भावार्थ —

भगवद्भागवद्गुरु में निष्ठा रखना और उनकी सेवा में सुन्दर रुचि रखना ही श्रद्धा का स्वरूप है, जैसे श्री गदाधर भट्ट जी "प्रभु की टहल नित कर निकरत आप भक्ति को प्रताप जानै भागवत गाई है । देत हुते चीका..... (भक्तमाल ५३०) । राजर्षि श्री अम्बरीष जी—भागवत ६—४—

सवैमनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठ गुणानुवर्णने ।

करौ हरैर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुति चकाराच्युत सत्कथोदये ॥ १८ ॥

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने हृषीतद् भृत्यगजस्पर्शेऽङ्गसंगमम् ।

घ्राणं चतत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९ ॥

पादौ हरेः क्षेत्र पदानुसर्पणे शिरो हृषीकेश पदाम्बुजन्दने ।

कामं चदास्येनतु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रयारतिः ॥ २० ॥

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ २१ ॥

यही (निष्ठाही) श्री भक्ति महारानी को फुलेल लगाना है ।

१—श्रद्धाई फुलेल—

शृङ्गार का मूल फुलेल है और धर्म का मूल श्रद्धा है । शृङ्गार से नायक विशेष प्रसन्न होता है । बिना फुलेल के शृङ्गार समुचित रूपेण नहीं बन पाता । वैसे—

श्रद्धा बिना भक्ति नहि तेहि बिनु द्रवहि न राम ।

भगवद्भक्ति का प्रथम साधन श्रद्धा ही है —भक्तिरहस्ये २—

आदौ श्रद्धा ततस्साधुसंगोऽथमजन क्रिया ।

ततोऽनर्थं निवृत्तिश्च ततो निष्ठारुचिस्ततः ॥ ५ ॥

कथाशक्तस्तथाभावस्ततः प्रेमाभ्युदंचति ।

साधकानामिदं प्रेमप्रादुर्भावो भवेत् क्रमात् ॥ ६ ॥

जैसे उवटन छुड़ाने और जल पोछने पर भी फुलेल की चिकनाहट बनी ही रहती है वैसे घर बन कहीं रहते हुये सांसारिक विषयों से चिन्तित हट कर भगवद्-भागवत् में श्रद्धा रखने से ईश्वर की प्रसन्नता रूप चिकनाहट रहती ही है यथा—

जे जन रुखे विषयरस चिकने राम सनेह ।

तुलसी ते प्रिय राम कहँ कानन बसौ कि गेह ॥

(दोहावली ६१)

जैसे शरीर में अन्य तेल या किसी दुर्गन्धित पदार्थ की दुर्गन्धि लगी हो तो फुलेल लगाने से छूटकर सुगन्धि आ जाती है और जब तक फुलेल की सत्ता रहती है तब तक अन्य दुर्गन्ध नहीं व्यापती, वैसे शुद्ध स्वरूप जीवात्मा में संयोग वश लगी हुई माया कृत दुर्गन्ध भी फुलेलवत् भगवद्भागवत् श्रद्धा से छूट सुयश रूप सुगन्ध फैल जाती है और फिर तब तो “चढ़ै न दूजो रंग ।” श्रद्धा की उपमा फुलेल से दी गई है और फुलेल को सनेह (स्नेह) भी कहते हैं—‘पेरत कोल्हू हारि तिल तिली सनेही जानि ।’ (दोहावली ४०३) ।

स्नेह का अर्थ प्रेम भी है “प्रेमो स्नेहोऽथदोहदम्” (अमरकोष) । श्रद्धा प्रेम स्नेह जिसमें जिस भाव से किया जाता है अन्त में उसी की प्राप्ति है—

यं यं वापिस्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।

तं तमेवैति कीर्तेव सदातद्भाव भावितः ॥ (गी० ८।६)

जैसे जड़ भरत जी को पूर्व में मृग शरीर मिला, ऐसे ही भगवान में श्रद्धा रखने से कृपा समुद्र भगवान् उस श्रद्धालु भक्त को अपना (धनुर्वाणद्यङ्कित) द्विभुज श्याम सुन्दर चिन्मय दिव्य रूप देकर अपने समीप सेवा में रख लेते हैं । भगवान में स्नेह करने से जन्म मरणादि दुःख छूट जाते हैं और अन्य के स्नेह से जन्म मरणादि क्लेश बार-बार भोगने पड़ते हैं । विख्यात हैं कि—

“एक मृगी के कारणे भरत धरी दुइ देह ।

तुलसी तिनकी कौन गति जिनके बहुत सनेह ॥

२ — उबटनो श्रौन कथा... छुटाइये ।

फुलेल द्वारा फूला हुई मैल उबटन लगाकर मर्दन करने से शरीर से छूटकर अलग गिर पड़ती है । इसी तरह जब किसी पूर्व पुण्योदय द्वारा प्रथम-प्रथम भगवद्भागवत्स्वरूप (अर्थ पंचकादिरहस्य) जानने की श्रद्धा होते ही पंचाभिमान रूपमैल फूल उठी कि हम तो उत्तम कुल प्रसूत हैं अपने से निम्न कुल प्रसूत से भक्ति रहस्य कैसे पूछें (१) हम तो स्वयं षोडश वेदांगों एवं आस्तिक नास्तिक चतुर्दश दर्शनों में अमुक-अमुक वेदांग या अमुक-अमुक दर्शन में पूर्णतया पारंगत हैं अपने से कम पढ़े हुआं से वा भाषा ग्रन्थों की कथा कैसे (क्यों) सुनें ? २ । हम तो भारी पद पर प्रतिष्ठित हैं कथा में सब तरह के लोगों के साथ बैठने में हमारी पदवी की प्रतिष्ठा कैसे रहेगी ॥ ३ ॥ कथा में सुन्दर, कुरूप, लूले,

लमड़े, रोगी, निरोग, सबल, निर्बल सभी तरह के लोग रहते हैं, अत्यन्त रूपवान होकर हम सब के साथ बैठकर कथा कैसे सुने ॥ ४ ॥ और हम तो उत्तम अवस्था सम्पन्न हैं परन्तु वे (कथा वाचक) तो हमारे सामने के बालक हैं उनसे क्या सुनना अथवा वे तो वृद्ध हो गये हैं उन्हें तो शुद्धाशुद्ध का ख्याल ही न रहता होगा वृद्धों की स्मरण शक्ति कम हो जाती है और दाँत न होने से वृद्ध का शब्द ही स्पष्ट नहीं निकलता उनसे क्यों सुने अथवा वे तो हमारे समकक्ष के ही हैं उनसे क्यों सुने ॥ ५ ॥ यही सब (अभिमान) मैल फूल पड़ी । किन्तु यदि संयोग से निरन्तर कुछ काल कथा सुनने को मिल गई तो लगातार सुनने से सब अभिमान मैल छूट जाय । महर्षियों ने इन्हीं पाँचों अभिमानों का कांटा रूप से कहा है—

“जातिर्विद्या महत्वं न रूपयौवनमेव च ।

यत्रेन वैपरित्याज्याः पंचैते भक्तिकण्टकाः ॥”

कांटा कहकर सूचित किया कि भक्ति तो सुकुमारि महारानी है और अभिमान कांटा है अतः—

“तिहिते भक्ति न नेरे आवति । अति सुकुमारि जानि डरपावति ॥”

(विश्राम सागर)

पुनः भगवान् भी तो मैल-अभिमान त्यागने पर ही प्रसन्न होते हैं ।

‘नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽमुरात्मजाः ।

प्रीडनायमुकुन्दस्य न ब्रतं न बहुज्ञता ॥

भाग० ७ । ७ । ५१ ॥

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न ब्रतानि च ।

प्रीयतेऽमलया भक्तया हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥ ५२

वैसे तो “भक्तियोगो बहु विधो मार्गैर्भामिनी भाव्यते ॥ भाग० ३।२६।७ के अनुसार भक्ति के अनेकों भेदोपभेद हैं परन्तु उनमें जो नौ मुख्य हैं उनमें श्रवण भक्ति प्रथम है—भाग० ७।५।२३

‘श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यामात्मनिवेदनम् ॥

जिस समय श्री रामचन्द्र जी ने भक्तों के मान प्रदानार्थं महर्षि श्री बाल्मीकि जी से पुछा कि ‘भगवन्, हम निज प्रियतमा श्री जनक राज किशोरी

एवं स्वदास भूत-प्रिय अनुज श्री लक्ष्मण कुमार युक्त कहाँ रहें ?' उस समय महर्षि जी ने कथा सुनने वालों के हृदय को सुन्दर निवास गृह बताया है ।

जिनके हृदय समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना ॥

भरिहि निरंतर होहि न पूरे । तिनके हिय तुम्ह कहें गृह खरे ॥

यहाँ खरे शब्द विचारणीय है ।

शंका—उबटन लगाने के कुछ क्षण बाद ही मलने से उबटन, मैल, और फुलेल तीनों एक साथ ही शरीर से छूटकर अलग गिर पड़ते हैं और यदि कुछ अंश बच भी रहता है तो वह भी स्नान जल के साथ धो उठता है तिस पर भी बच रहे तो कपड़े से पोंछने पर वह बचता ही नहीं । तो क्या उसी तरह श्रद्धा-कथा सुनने का असर और दासत्वाभिमान भी छूट जाते हैं ?

समाधान—

फूलों में बसाकर जो तिल पेरा जाता है उस तिल के तेल को फुलेल कहते हैं । उबटन से तिलांश ही भर निकलता है पुष्पांश नहीं, वैसे प्रथम से ही जो तिलवत संसारी श्रद्धा बनी रहती है वही पुष्परसवत् भगवद्भागवत् श्रद्धा मिलने से फुलेल हो गई । कथा श्रवण-उबटन से मैल = अभिमान के साथ-साथ तिलांशरूपी संसारी श्रद्धा दूर होती है, सुगन्ध रूप भगवद्भागवत् श्रद्धा नहीं छूटती किन्तु जैसे उबटन की औषधियों के योग से फुलेल की सुगन्ध और बढ़ जाती है वैसे भगवत्कथा उबटन से भगवद्गुण सुगन्धि का योग पाकर श्रद्धा और भी बढ़ जाती है । और दासत्वाभिमान मैल नहीं है अपितु वह तो श्री भक्ति महारानी के ललाट की श्री (माँग का सिन्दूर) है । सिन्दूर भारतीय स्त्रियों का सोहाग रूप है और दासत्वाभिमान भक्ति का सिन्दूर है इसी से यहाँ सम्पूर्ण शृङ्गार कहकर सिन्दूर का वर्णन कवित्त में नहीं किया गया है । स्त्रियाँ अपने अपने देवी-देवताओं से यही चाहती हैं कि मेरे माँग का सिन्दूर (अहिवात) बना रहै—

“नाथ भजहु रघुनाथ पद मम अहिवात न जाइ ।”

वैसे उपासक भी सबसे सदा यही माँगता है कि मेरा (जीव का) निज धर्म दासत्वाभिमान कभी न जाय ।

“अस अभिमान जाय जनि मोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥”

जिहि जिहि जोनि करम बस भ्रमहीं । तहँ तहँ ईस देहु यह हमहीं ॥

सेवक हम स्वामी सिय नाहू ! होइ नात यहि ओर निबाहू ॥”

‘जेहि जोनि जन्मौ करम बस तहँ रामपद अनुरागहु’

‘कृष्णपद रति भूयान्मम जन्मनि जन्मनि ।’ इत्यादि

क्योंकि—

“सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि ।”

जैसे उबटन का रस और सुगन्ध शरीर में प्रविष्ट हो जाती है और उसकी खली (झीली, फुरी) और तेल मैल के साथ-साथ अलग गिर पड़ता है वैसे कथा—उबटन से भगवद्गुण रस और यशः सुगन्ध अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाता है और खलीवत् संसारी दृष्टान्त, मैलवत् पंचाभिमान और तेलवत् सांसारिक श्रद्धा ये तीनों पदार्थ एक साथ ही छूटकर गिर पड़ते हैं ।

३—मनन सुनीर अन्हवाइ —

भगवान् की माधुर्यैश्वर्यन्ति लीलाओं को सुनकर बारम्बार अपने हृदय में लाकर उसका चिन्तवन (उस पर विचार) करना ही मनन का स्वरूप है । मनन करने में श्री चतुर्भुज दास जी की कथा का चोर दृष्टान्त है ।

“भाग्यो धन लैके कोऊ, निकसी पुराण वात,

कबै न योगात दीक्षा भिक्षा सुनि शिष्य भयो—

गह्यो यों पुकारिये ॥ (भक्त माल कवित्त ४६४)

मनन करना ही भक्ति महारानी को स्नान कराना है । सुन्दर जल से शरीरिक ताप (गर्मी) दूर होकर मन को सुख होता है । वैसे भगवद्भागवत् यश के मनन से भौतिक, दैहिक और दैविक ताप दूर होकर जीवात्मा को स्वमुख (स्वरूपानन्द अनुभवानन्द ब्रह्मानन्द) प्राप्त होता है तथा भगवत्कृपा से लौकिक पारलौकिक सोच स्वप्न में भी नहीं होता ।

फिरत सनेह मगन सुख अपने ।

नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ॥

“शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।

ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्व ज्ञानं च धीगुणः ॥”

इन आठ प्रकार की बुद्धियों में शुश्रूषा और श्रद्धा तो एक ही है । श्रवण, ग्रहण और धारण का समावेश ‘श्रवण कथा’ में हो जाता है । ऊहा आपोह

दो का समावेश 'मनन' में है और सत्संग से ही अर्थ ज्ञान एवं यथार्थ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है जिसका फल कि हरि साधु सेवा है अर्थात् वेद शास्त्रादि के सम्मत से सर्व श्रेष्ठ भगवन्नाम रूपादि ही है अतः श्रेष्ठ की सेवा ही सबका सत्त्व है तथा भगवत्तुल्य भगवद्भक्त भी हैं ।

“विधि हरिहर मय वेद प्राण सो ।”

विष्णोरेकैक नामैव सर्व वेदाधिकंमतम् ॥ (प० पु०)

इसी तरह—

‘विष्णवो मम देहस्तु तस्मात्सेव्यो महामुने ॥’ (ता० पं० रा०)

“संत भगवत अन्तर निरन्तर नहीं किमपि मति मलिन कह दास तुलसी ।”
(वि० प०)

इससे सूचित होता है कि श्री हरि भक्ति करने से उपर्युक्त आठो प्रकार के बुद्धिगुणत्वतः अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं । ज्ञान दो प्रकार का कहा जाता है—

एक तो श्रयण ज्ञान पावक, ज्यो देखि परत माया जल वर्षत वेगि बुझि जात है । दूसर मनन ज्ञान बीजुरी ज्यौ चमकत माया जल वर्षत कथौ न बुझात है । अज्ञात

तात्पर्य यह कि बिना मनन किये सुनी हुई वस्तु शीघ्र ही नष्ट (विस्मृत) हो जाती है और सुनकर मनन की हुई वस्तु विद्युत्त्वत् चमकती (उपस्थित) रहती है । सुनीर—जो सम शीतोष्ण हो, हृदय को प्रिय लगने वाला हो । सुनीर के स्नान से शारीरिक कान्ति बढ़ती है, मनन से बुद्धि प्रखर होती है ।

४— अंगुछाई दया

निः स्वार्थ भाव से दूसरों के दुःख निवारण की इच्छा का नाम दया है—
रन्तिदेव—

“न कामयोऽहं गति परामर्ष्टद्धिं युक्तामधुनमंवं वा ।

आर्तिं प्रयद्योऽखिल देह भाजामन्तः स्थितोयेन भवन्त्यदुःखः ॥

(भाग० ६।२१।१२)

केवल राम (श्री० बूवा जी) ‘घर घर जाँय’ से

करुणा निधान कहूँ बैल के लगायो सांटो दया आप कै ॥ (भक्त वा०)

इस प्रकार दया करना श्री भक्ति महारानी का शरीर पोछना है । जैसे अंगोछा जल के साथ ही शरीर में लगे तेल उबटन और अवशिष्ट मैल को अपने

में लेकर शरीर से छुटा देता है वैसे भक्त जन दयापूर्वक निःस्वार्थभाव से स्वाभाविक रूप से दूसरों का दुःख तन मन धन द्वारा छुटाकर अपने में लेते हैं—‘संत सहहि दुख परहित लागी ।’

अंगोछा से शरीर का तन उबटन और मैल छूटता है, दया से जीव के तन, मन और वचन का कण्ठ दूर होता है। पोंछने पर जैसे शरीर से मैल, उबटन और जल निकल जाता है ऐसे जीव मात्र पर दया करते रहने पर सांसारिक पदार्थों में श्रद्धा तेल, पंचाभिमान-बैल, प्रकृत दृष्टान्तादि उबटन की खली और स्त्री पुत्रादि में आसक्ति जल मन से निकल जाता है। वैष्णवों के प्रधान तीन कर्मों में दया की गणना प्रथम की गई है—ना० पा० रा० ।

“वैष्णवानां त्रयो कर्म दया जीवेषु नारद ।

गोविन्दैकान्तभजनं तदीयानां समर्चनम् ॥”

वैष्णव जन तो तेजे कहिये जेने पीर पराई जाणेरे । (श्री नरसी)

‘सम सन्तोष दया विवेक तो व्यौहारौ सुखकारी ॥ (विन० प०)

दया से-समता, संतोष और विवेक उत्पन्न होता है, इन्हीं चार गुणों के होने पर लोक व्यौवहार भी सुखकारक हो जाता है ।

५—नवीन वसन

वैसे तो वस्त्र सब कही, पर विशेषतर स्त्रियों का प्रधान शृङ्गार है। इसी तरह नम्रता सभी सिद्धियों का पर विशेष कर भक्ति का प्रधान साधन है अन्य शृङ्गार होने पर भी वस्त्र बिना शोभा नहीं। स्त्री को कभी भी वस्त्र त्यागना नहीं चाहिये ।

‘वसन हीन नहि सोह सुरारी । सब भूषण भूषित वर नारी ॥

“अनुत्तरीयो नोभवेत् ।” नगना स्त्रियों को देखना पाप कहा गया है ।

‘न नगनांस्त्रियभीक्षेत् पुरुषोवा कदाचन ।’ (धर्म शिक्षा पत्री)

श्रीमद्भागवत् में श्री कृष्ण बाणासुर युद्ध में वर्णित है कि—

‘तन्माता कोटरा नाम नगना मुक्त शिरोरुहा ।

ततस्तूर्यङ्मुखे नगनामनिरीक्ष गदाग्रजः ॥”

भा० १०।६२।२८।

इस विषय में राम चन्द्रिका का रावण-हनुमत् संवाद पढ़ने योग्य है ।

लंकाधिराज रावण के प्रश्न

१—रे कपि कीन तू ?

२—को रघुनन्दनरे ?

३—सागर कैसे तर्यो ?

४—काज कहा ?

५—कैसे वंध्यो अजु ?

श्री रामदूत श्री हनुमान जी के उत्तर

१—अक्षको घातक दूत वली रघुन्दन जू को,

२—त्रिशिरा खरदूषण-दूषण भूषण भू को ॥

३—जसगोपद ।

४—सिय चोरहि देखो ।

५—सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लखों ॥

उसी तरह मानव मात्र को कभी भी नम्रता न त्यागनी चाहिये, यदि प्रमाद वश त्याग दे तो उसका मुख देखने वालों को प्रायश्चित्त करना चाहिये। जैसे नग्न स्त्री की उपमा चुड़ैल (प्रेतनी) से दी जाती, है वैसे नम्रता रहित की उपमा भूत से ।

“नवन्ति सफला वृक्षा नमन्ति सगुणा जनः ।

शुष्क काष्ठस्तुमूखस्तु न नमति कदाचन ॥”

‘पूर्णोऽपि कुम्भं न करोति शब्दं रिक्तो, घटो घोषमुषैति घोरम् ।

विद्वान् विनी तो न करोति गर्वं, बहूनि जल्पन्ति गुणैर्विहीनाः ॥’

वर्षहि जलद भूमि नियराये । यथा नवहि बुध विद्या पाये ॥

तात्पर्य यह कि नम्रता रहित को मूर्ख समझना चाहिये । अथवा यों समझे कि सब गुण विद्या आदि साधन है और नम्रता साध्य (फल) है ।

६—प्रण सौधों ले लगाइये

इत्र की सुगन्ध केवल धनिकों ही की समा में रहती है परन्तु उपासक (भक्त) के नित्य नियम प्रण (यही एक टेक फिर उरते न टरी है) रूप इत्र की यश-बड़ाई रूप सुगन्ध देश-देशान्तरों में फैल जाती है । पुष्पों के सार-रस से इत्र बनता है, वैसे भक्त लोग पुष्परूप वेद शास्त्र के सार रस रूप श्री भगवन्नाम यश कहने सुनने का ही नित्य नियम लेते हैं, और यह इत्र जो चाहे उसी को मिल सकता है । प्रण निभाने के दृष्टान्त में राजा श्री आशकरण जी विशेष रूप

से भक्तमाल में कहे गये हैं, उनका निमम था कि—“घरी दश मंदिर में...से लेकर—‘एंडी कटि गई ऐपै टेढी हू न भई भौह करी नित्य नेम रीति धीरज दिखायो है ॥ तक (क० ६०८) देखिये ।

७—आभरण नाम हरि

‘हरित योगि चेतांसीति हरिः ।’

‘हरिर्हरति पापानि दुष्ट चित्तरपि स्मृतः ।

अनिच्छया पि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥’

बिना भूषण के स्त्री प्रायः असुन्दर, परन्तु बिना हरि नाम जप के भक्त सर्वथा ही असुन्दर । स्त्रियों को भूषण-वत् प्रिय प्रायः कोई धन नहीं, परन्तु भक्ति महारानी को तो सर्वथा भगवन्नामवत् कोई भी साधन प्रिय नहीं ।

गो कोटि दानं ग्रहणेषु काशी, प्रयाग गंगाऽयुत कल्पवासी ।

प्रज्ञा युतं मेरु सौवर्ण दानं, गोविन्द नाम्ना न भवेच्च तुल्यम् ॥

(पांडव गीता)

साधारण स्त्रियाँ भूषण पाकर प्रायः अपना दुःख भूल जाती हैं परन्तु भगवन्नाम से ही भारी पाप तथा तज्जनित दुःख सदैव के लिये नष्ट हो जाते हैं ।

“अत्यद्भुतमिदं ख्यातं हरेर्नामानुकीर्तनम् ।

अजामिलौऽपि येनैव मृत्युपाशात्प्रमुच्यते ॥

आभूषण से स्त्रियों के कुरूपतादि बाहरी औगुण प्रायः ढँक से जाते हैं और ऐसे कैसे भी लिये गये भगवन्नाम से तो पाप रूप औगुण नष्ट ही हो जाते हैं ।

‘जासु नाम पावक अधतूला ॥’

‘साकेतं परिहासं वा स्तोम हेलनमेव वा ।

वैकुण्ठ नामग्रहणमशेषाद्य हरं विदुः ॥’

स्त्रियाँ दरिद्र शमन के लिये भी भूषण चाहती हैं, जीव को उचित है कि सार निवृत्त्यर्थं भगवन्नाम ही जपता रहें ।

किंतात वेदागम् शास्त्र विस्तरै स्तीर्थै रनेकैरपि किं प्रयोजन ।

यद्यात्मनो वाञ्छसि मोक्ष कारणं गोविंद गोविंद इति स्फुटं रट ॥”

साधारण स्त्रियाँ प्रायः भूषणों को परम जीवन तथा आता पिता पुत्रादि के मान हितकारी मानती हैं, जीव को चाहिये भगवन्नाम को ही परम तप सधर्म, परम सहायक और मुख्य स्वामी जानें ।

नामैव परमोवर्मो नामैव परमं तपः ।

नामैव जगतां बन्धुः नामैव जगतां पतिः ॥ (आदि पु०)

स्त्रियाँ आर्थिक विपत्ति में भूषण द्वारा भी निर्वाह कर लेती हैं जीव को इस कलिकाल रूपी घोर आपत्तिकाल में भगवन्नाम से ही निर्वाह करना चाहिये अन्य साधनों से निर्वाह असम्भव है, ऋषियों का अनुभव है कि—

‘हरेर्नामैव नानैव नामैव मम जीवनम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥’

भगवान् श्री कृष्ण जी ने अजुन से कहा कि मैं अपनी भक्ति नाम जापक को ही देता हूँ । (आदि पुराणे)

ये नाम युक्ता हि चरन्ति भूमौ, त्यक्त्वार्थं कामान् विषयांश्च भोगात् ।

तेषां हि भक्तिम् परमात्म निष्ठा, दास्यामि सत्यं मम शान्ति युक्ताम् ॥

सम्पूर्ण शृङ्गारिक पदार्थों में गहने का वजन भारी होता है, सम्पूर्ण साधनों में भगवन्नाम जप गरिष्ठ (श्रेष्ठ) है इसी से भगवान् ने कहा कि ‘यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि० ।’ यहाँ तक कि भगवन्नाम स्मरण से मंत्र तंत्रादि सभी साधनों की पूर्ति शीघ्र ही हो जाती है ।

‘यस्यस्मृत्या च नामोक्त्या तपो दान क्रियादिषु ।

न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्देतमच्युतम् ॥’ (स्क० पु०)

रानी के प्रिय आभूषणों में दूषण लगाने वालों को जैसे राज कर्मचारी दण्ड देते हैं वैसे श्री भक्ति महारानी के परम प्रिय आभरण श्री भगवन्नाम में अर्थवादादि दूषण कल्पित करने वालों को यमराज घोर दण्ड देते हैं ।

अर्थवादं हरेर्नाम्निसंभावयति योनरः ।

सपापिष्ठो मनुष्याणां नरके पातयति यमः ॥

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्म जालम् ।

येन श्री राम नाममृतं पिबति, ह्यनिशमनवद्यमवलोक्य कालम् ॥

(बि० प०)

राम नाम को अंक है सब साधन है शून्य ।

अंक गये कछु हाथ नहि अंक रहे दशगुन ॥

आभरणों का मूल्य प्रायः सभी कह समझ सकते हैं परन्तु भगवन्नाम (महात्म्य) कोई नहीं कह सकता । स्त्री के भूषणों को सुन तथा देखकर चो

सोग उसके संचित (गड़े) धन को भी चुरा ले जाते हैं, वैसे भगवन्नाम रूप भूषण को मृत्कर जगत्प्रसिद्ध 'नारायण' नामक चोर मनुष्यों के जन्म जन्मार्जित (संचित) पापों को चुरा ले जाते हैं ।

नारायणो नाम नरोत्तरायणां प्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम् ।
अनेक जन्मार्जित पाप संचय हरत्यशेषं श्रुत मात्र एव ॥ (वा० पु०)

नाम जप की चार विधि कही गई है ।

'मुख के सुमिरण नीर गति मन के सुमिरण मीन ।

करके जाप पिपीलिका सुरति विहंग प्रवीन ॥

भूषणों के भी सामान्यतः चार भेद हैं ? अवेध्य जो बाँधकर धारण किया जाय । २—वेधनीय = जो बिना बाँधे पहिना जाय । ३—क्षेप्य = जिनमें अंग डालकर पहिना जाय । ४—आरोप्य = जो अंगों (च्छिद्रा) में लटकाकर पहिना जाय । इनके भेदोपभेद बहुत हैं, रत्नरहस्य, हेमकोश, अमर विलास और मानसोल्लास आदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में भूषणों के अनेक भेद संग्रह हैं उनमें से कुछ दिया जाता है । मुकुट और चन्द्रिका केवल सम्राट् और सम्राज्ञी के ही धारण करने का नियम है बाकी अन्य भूषणों के धारण में सबका समान अधिकार है ।

१—गर्भक, ललामक, वाल्यपाश, पारितथ्य, हंसतिलक, टुण्डक, चूड़ामंडन, चूड़िका और लंबक ये नौ शिर के आभूषण हैं ।

२—मुक्ता, कण्टक, द्विराजिक, त्रिराजिक, स्वर्णमध्यक, बज्रगर्भक, मुरिमण्डन, कूंतल, कर्णपूर (कर्णफूल) कर्णिका, कर्णेन्दु (ताटक) और शृङ्खल ये बारह कर्ण के आभूषण हैं ।

३—पत्रश्यामा, कनक विन्दु और ललाटिका ये तीन ललाट के आभूषण हैं ।

४—पदक, बंधुक और पंचावली ये तीन उर (वक्षस्थल) के आभूषण हैं ।

५—ललन्तिका, प्रालंबिका, गुच्छ, गुच्छार्ध, देवगुच्छ, गोस्तन, उरःसूत्रिका, मुक्तावली, अर्धहार, मानवक, एकावली, नक्षत्रमाला, सरिका और बज्रकलिका ये चौदह गले में पहिने के कंठाभरण हैं ।

६—नथ, पुष्प, वेशरि, लवंग और नासामणि ये पाँच नासिका के आभूषण हैं ।

७—अर्धचन्द्रक और पूर्ण चन्द्रक ये दो ललाट के भूषण हैं । और बलयाकृति चूड़ा (जूड़ा) का भूषण—चूड़ामणि ।

८—केशर, अंगद, पंचका, कटक, बलय और कंकण ये छः बाहु, के आभूषण हैं ।

९—द्विहीरक, बज, रवि नन्द्यावती, नवरत्न, वज्रवेष्टित, त्रिहीरक, मण्डल, शुक्ति मुद्रिका, अंगुलिमुद्रिका और मुद्रामुद्रिका ये ग्यारह अंगुलियों के आभूषण हैं ।

१०—कांची, मेखला, रसना, कलाप, कांचीजल, किंकिणी और शृङ्खल ये सात कटि भूषण हैं ।

११—पादचूड़, पादकण्टक, पादपद्मक, पादकटक, शब्द किंकिणि और पुरुष नूपुर ये छः पादाभरण हैं ।

१२—मुद्रापति (नूपुर), क्षुद्रमुद्रिका और त्रिवेष्टित ये तीन पद की अंगुलियों के आभरण हैं ।

इनके बनाने की विधि और आकृति आदि का वर्णन बड़े विस्तार के साथ है । थोड़े से हेर-फेर से ये आभूषण पुरुषों के योग्य भी हो जाते हैं और बहुतों का नाम भी वही रहता है । आज की तरह जब भारत अत्यन्त दरिद्र नहीं था उस समय प्रत्येक सद् गृहस्थ स्त्री पुरुष अनेक प्रकार के आभूषण धारण करते थे, आज तो भोजन पर भी प्रतिबन्ध (कन्ट्रोल) है । स्त्रियों के लिये द्वादशांगों का आभूषण जो ऊपर कहा गया है वह मध्यम श्रेणी का है । उत्तम तथा अधम आभूषण निम्नलिखित हैं ।

उत्तमाभूषण—

“लज्जा, शीलऽरु मधुर वाक्य, दृढ़ता निज धर्महि ।
सरल सुभाव पवित्र रहव संतोष सुकर्महि ॥
सुहृदभाव अरु विनय क्षमा दृढ़ हिय में धारै ।
बरहे गुरुजन सेव आभरण हृदय विचारै ॥
द्वादश आभूषण सुदृढ़ अति उत्तम जोतिय धरै ।
कह ‘कुमार’ निज पति सहित अखिल विश्व पति बश करै ॥

अधमाभूषण—

अदृढ़ धर्म, निर्लज्ज वाक्य कटु कठिन सुभावा ।
शील न शोच न विनय क्षमा नहि सौहृद भावा ॥

नहि संतोष न शुभ करम नहि 'कुमार' गुरुसेव किय ।
द्वादश आभूषण अधम धरै जाय सो नर्क तिय ॥

नाम—हरि साधु सेवा कर्ण फूल—

कर्णफूल कहने से आयरिंग, बिजुली, ताटक, बाली, भूमक, बिरिया और तरकी आदि स्त्रियों के समी कर्ण भूषणों का ग्रहण है । देहली दीपक न्याय से हरि शब्द नाम और साधु सेवा दोनों ओर लगाने से ही अर्थ की संगति बैठती है क्योंकि हरि सेवा एक कान का भूषण और साधु-सेवा दूसरे कान का भूषण है, अथवा—'भगति सुतिय कल करन बिभूषण ।' श्री हरि नाम जप एक कान का भूषण है और साधु-सेवा दूसरे कान का भूषण है । एक कान में भूषण हो पर दूसरा खाली हो तो कान बूचा लगता है स्त्री की शोभा नहीं रहती इसी तरह श्री हरि सेवा (या नाम जप) और साधु सेवा इन दोनों में से एक न करै तो भक्ति बूची लगै उसकी यथार्थ शोभा न हो । कर्ण भूषण पाँच जाति के होते हैं जड़ाऊ (रत्नजटित), सोने, चाँदी, राँगा और काष्ठ का । इसी तरह सेवा भी पाँच तरह की है अर्थात् तन, मन, वचन और धन चारों से सेवा करना जड़ाऊ है । मानसिक नाम जप या हरि सेवा और शारीरिक साधु सेवा स्वर्णमय कर्णफूल है, मानसिक साधु सेवा (प्रेम) शारीरिक हरि सेवा नाम जप चाँदी का कर्णफूल है, केवल द्रव्य द्वारा उभय सेवा राँगे का और केवल वचन द्वारा काष्ठ का कर्णफूल है । इन पाँचों से भक्ति रहती है जैसे पाँचों कर्णफूल सौभाग्य सूचक हैं । श्री हरि नाम का किंचिद्दिग्दर्शन अन्य आभरणों के रूपक में देख चुके हैं अब हरि साधु सेवा का भी एकाध प्रमाण देखते हैं—श्री हरि सेवा का प्रमाण—

धर्मानशेषानपि यो विहायभजेदनन्यो हरि पाद पदमम् ।

दत्त्वापदं मूर्ध्निमुधामिकानां स एव तद्धाम सुखादुपैति ॥

(हरि भक्ति कल्पलतिका)

'यथा गृहीत्वा शुनः पुच्छं ततुमैच्छति सागरम् ।

तथात्यक्ताहारेः सेवामन्योपासनया भवेत् ॥' (प० पु०)

'वासुदेवं परित्यज्य यो अन्यदेवमुपासते ।

तृषी जान्हवी तीरं कूपं खनति दुर्मतिः ॥' (पाँडवगीता)

अर्चयित्वा तु गोविंदं तदीयान्नाचर्यतिये ।
 न ते विष्णु प्रसादस्य भाजनं दामिका जनः ॥ (प० पु०)
 आराधनानां सर्वेषां विष्णोरा राधनं परम् ।
 तस्मात्परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥ (प० पु०)
 हरि भक्तमनाराध्यं तन्मूर्तिमर्चयतिहिये ।
 मुक्त मृत्यु करीतस्ययतो भक्त वशोहरि ॥ (म० भा०)
 शिवलिङ्ग सहस्राणि शालग्राम शतानिच ।
 द्वादश कोटिविप्राणामेकं श्वपच वैष्णवम् ॥

भुक्तिस्त्रीकर्णपुरी मुनिहृदयवयः पक्षती, तीरभूमौ संस्गरसारसिन्धो ।

कलिकलुषतमस्तोमसोमार्कविम्बो ॥

उन्मीलितपुण्यपुञ्जद्रुमललितदले, लोचने चश्रुतीन ।

कामं रामेति वर्णो शमिहकलयतां सन्ततंणज्ज नाना ॥

श्री भक्ति महारानी के दाहिने कान का भूषण संत सेवा और बायें कान का श्री हरि सेवा, हरि सेवा उतनी विख्यात नहीं होती जितनी संत सेवा । क्योंकि देश विशेष खास कर पूर्वी उत्तरी भारत में नाम कर्ण का भूषण वस्त्र से विशेष ढँका रहता है इसी से उसकी चमक प्रायः वस्त्र के नीचे ही तक रहती है इसी तरह हरि सेवा घर-गाँव तक ही प्रख्यात होती है क्योंकि प्रतिमा रूपेण पुज्य श्री हरि मंदिर एवं मन में ही बिराजते हैं और दक्षिण कर्ण प्रायः खुला रहता है इसी से दूर तक चमकता है ।

“मन्दोदरी श्रवण ताटंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥”

इसी तरह संत चारों तरफ घुमा करते हैं ।

‘संत सुखी विचरन्ति मही ।’

इसी से संत सेवा सुयश सब दिशाओं में जगमगा उठता है । हरि और साधु सेवा करने वालों में श्रीमती महारानी ‘रत्नावती’ जी विशेष रूप से उल्लेखनीया हैं, इनका शुभ चरित्र भक्त माल छप्पै १४३ और उसकी टीका में वर्णित है । धर्म शास्त्रानुसार विधवा कर्ण भूषण नहीं धारण कर सकती है इसी तरह जिसमें श्रद्धा, कया, श्रवण, निष्ठा, निरभिमानिता, मनन शीलता और दयालुता आदि अनेक गुण हो परन्तु श्री हरि साधु सेवा निष्ठा न हो तो उसका भक्ति विधवा जानने योग्य है ।

६—मानसी सु नथ—

नथ, वेसरि, भूजनी, बुलाक, छुच्छी, नासामोती और लींग आदि स्त्रियों के नासिका—भूषणों के नाम हैं। मानसी सेवा बिना भक्ति और नथ बिन स्त्री शून्य नासिका होने से रांड सरीखी लगती है। दण्डी, गूँजा, मूँगा, दुरदुरी, चौकी, नग, रई और टिकरी इन आठ अंगों करके नथ पूर्ण होकर शोभित होती है इसी तरह अष्टयाम मानसी भावना से ही भक्ति की शोभा और उत्तमता है।

१०—संग अंजन बनाइये—

अंजन में गुण दोय रोग कटे वश होय पिय ।

सत्संग में गुण सोय भव छूटे वश होय हरि ॥

अंजन से शोभा बढ़े सत्संग बढ़ावे भक्ति ।

सत्संग करै 'कुमार' तो छूटे जग अनुरक्ति ॥२॥

महाराजमुचुकुन्द ने भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी से यही सत्संग ही माँगा था । भाग० १०।५।१५४

भवापर्णो भ्रमतो यदाभवे ज्ञानस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।

सत्संगमोयर्हितदैर्घ्यतौ परावरेणे त्वयि जायते मतिः ॥

परमहंसाग्रगण्य श्री शुकाचार्य जी ने भी रंभा से यही कहा कि—

मार्गे मार्गे जायते साधु संगो संगे संगे श्रूयते कृष्ण कीर्तिः ।

कीर्तौ कीर्तौ निस्तदाकार वृत्तिः वृत्तौ वृत्तौ सच्चिदानन्द भासः ॥

श्रीमती मदालसा भी सदैव अपने पुत्रों को यही उपदेश देती रहीं कि—

'संगः सर्वात्मना त्याज्यः यदित्यक्तुं न शक्य से ।

सद्भिरेवप्रकर्तव्यं सत्संगोभव मंजनः ॥'

भक्तप्रवर श्री उद्धव जी से श्री भगवान् ने अपने रोकने का यही उपाय बतलाया था कि— भाग० ११-१२ ।

न रोधयतिमां योगो न सांख्यं धर्मं एव ।

न स्वाध्यायस्तपोत्यागो नेष्टापूतं सदक्षिणा ॥१॥

अतानि यज्ञ इच्छन्दांसि तीर्थानि नियमो यमः ।

यथावरुधन्तो सत्संगो सर्वसंगापहो हिमाम् ॥२॥

सत्संगेन दैतेया यातुधाना मृगा खगः ।

गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारण गुह्यकाः ॥३॥

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्रोः स्त्रियोऽन्त्यजाः ।

रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्मन्युगोऽनघ ॥४॥

वहवो मत्पदं प्राप्ताः ॥५॥ इत्यादि

वशिष्ठ सार में कहा गया है कि संतों का संग अवश्य करो, संतों के पास जाओ यदि वे तुमसे न बोलें तो भी उनकी आपस की बात सुनो उसी में तुम्हें कल्याणकारी उपदेश हो जायेगा ।

“सदासन्तोऽभिगन्तव्या न यद्यप्युपदिशन्तिवः ।

यदि स्वैरं कथास्तेषामुपदेशोभवन्तिहि ॥

पुनः—“यस्मिन्देहेहि तत्त्वज्ञोनास्ति सञ्जन पादपाः ।

सफलः शीतलच्छायो न तत्रदिवसंवसेत् ॥

अर्थात् जहाँ सत्संग न मिले वहाँ दिन में भी क्षण भर भी न वास करै शत्रि की कौन चर्चा । जन्म मरण महा रोग छुड़ाने की औषधि—भक्ति सत्संग से ही प्राप्त होती है । भगवान् ने सत्संग को अमृत कहा है ।

वेद पर्यासिधु सुविचार मन्दरमहा अखिल मुनिवृन्द निर्मथन कर्ता ।

सार सत्संगमुद्धृत इतिनिश्चितं वदति श्री कृष्ण वैदर्भिभर्ता ॥ (वि० प०)

सत्संग पर जितनी बातें कही गई हैं उन सबका वर्णन विनय पत्रिका पद ५८ में श्री गोस्वामी जी ने किया है । भगवत्साक्षात् (श्री हरि दर्शन) कराने के लिये सत्संग परमोच्च साधन है इसी से सत्संग को अंजन कहा है ।

११—भक्ति महारानी को—

भक्ति शब्द के सामान्यतः तीन भेद हैं—रूढ़ि, यौगिक और तांत्रिक ।

१—रूढ़ि—सांप्रदानुरक्ति रीश्वरे ॥

२—यौगिक—“हृषीकेश च हृषीकेशं सेवनं भक्ति रुच्यते ॥”

यह ‘भज् सेवायाम्’ धातु के योग से बना है ।

३—तांत्रिक—जो ‘भ’ भव समुद्र (जन्म मरण चक्र) को ‘क’ कदन-नष्ट करके ‘ति’ तीनों प्रकार के जीवों के लिये सर्व सिद्धियाँ तथा भुक्ति मुक्ति आदि सबको सुलभदासी बना दे ।

‘हरि भक्तिर्महादिव्या सर्वमुत्पादि सिद्धयः ।

भुक्तिश्चचाद्धतास्तस्या चेष्टिका दहनुव्रताः ॥

तत्सर्वं भक्ति योगेन मंदभक्तोलभतेऽञ्जसा ।

स्वर्गापवगौ मद्धाम कथं विद्यति वाञ्छति ॥

सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं ॥

दासी की सेवा से रानी बश में नहीं होती परन्तु रानी की सेवा से दासियाँ स्वतः बश में आ जाती हैं, ऐसा जानकर ही सज्जन लोग भक्ति भक्ति की स्पृहा पिशाची को त्याग कर श्री हरि भक्ति करते हैं ।

‘भुक्ति भुक्ति स्पृहायावत्पिशाची हृदि वर्तते ।

तावद्भक्तिसुखस्यात्रकथमभ्युदयोभवेत् ॥’

‘अस विचारि हरि भक्त सयाने । भक्ति निरादरि भक्ति लोभाने ॥’

चक्रवर्ती नरेश की प्रिया रानी के सेवक गण अन्य मांडलिक राजाओं तक को तुच्छ समझते हैं इस तरह श्री हरि भक्त भी—

तीन टुक कोपीन में अरु भाजी बिन लौन ।

बुलसी रघुबर उर बसै इन्द्र बापुरा कौन ॥

राम अमल करते रहैं पीवें प्रेम निशंक ।

आठ गाँठ कोपीन में कहैं इन्द्र को रंक ॥

इस कवित्त के प्रत्येक तुक का अन्तिम शब्द ऐसा आया है मानो कोई किसी को निर्देश कर रहा हो कि अमुक कार्य कीजिये । इससे सूचित होता है कि जैसे ‘राम’ शब्द मध्यवर्ती ‘आ’ कार वाच्या श्री जानकी जी ‘म’ कार वाच्य जीव से कहती हैं कि तुम —‘सुत बित लोक ईषना तीनी ।’ को सर्वथा त्याग कर परब्रह्म श्री राम जी की उपासना करो ये ही तुम्हारे सच्चे सहायक हैं, और ‘र’ कार (रेफ) वाच्य श्री राम जी से प्रार्थना करती हैं कि महाराज इस शरणागत चेतन को अब अपना खास दास बनाइये, आपकी विषम माया बश होकर यह चिर काल से दूसरों की दासता करना चला आता है पर कभी सुखी न हुआ अतः आपकी शरण में आया है अब इसे अपनाइये ; उसी तरह तीन तुक के पश्चात् एक तुक के आरम्भ में भक्ति शब्द है । मानो जो—

त्रिषयी साधक सिद्ध सयाने । त्रिविधि जीव जग वेद बखाने ॥

हैं इन त्रिविध जीवों से श्री भक्ति महारानी कहती हैं कि आप लोग (हितकारी बात प्रायः कडुई मालूम होती है इसी से बड़े आदर से कहती हैं कि मान जाय तो इसका कल्याण हो जाय अतः आप लोग) गाढ़ी त्रिविधि ईषनायें त्यागकर उपर्युक्त प्रकार से भगवदुपासना करके श्री हरि की ही चाहना कीजिये जिससे सारा संसृति क्लेश सर्वदा के लिये छूट जाय ।

‘गये राम शरण सब को भलो ।’

‘कै तोहिं लागहि राम प्रिय कै तु राम प्रिय होहि ॥’

यदि इस जीव ने श्री भक्ति महारानी का कहना मानकर शिक्षानुसार उपासना किया तो पुनः श्री भक्ति महारानी जी 'लाल = प्रभु' और 'प्यारी = प्रभु प्रियतम श्री जू' अर्थात् उपासकों के इष्ट युगल सरकार से जीव की ओर से प्रार्थना करती हैं कि हे प्रिया प्रियतम जू ! अब इस जीव को अपना 'स्वदास' कहकर गाइये अर्थात् इसे दास शब्द से सम्बोधित कीजिये और जब यह दास की पदवी पाये ।

'तब यह जीव कृतार्थ होई ।' 'महाराज राम आरदयो धन्य सोई ।'

१२—शृङ्गार चारु बीरी चाह

ताम्बूल वीटिका से शृङ्गार की शोभा होती है एवं भगवन्मिलन की चाह से भक्ति की शोभा है नौ वस्तु एकत्र मिलने से उत्तम बीरी होती है ।

(आनन्द रामायण मनोहर काण्डे)

'नागवल्ली क्रमुकं च खदिरं सौध एवच ।

एला लवंग कपूर जावित्री वराङ्गकम् ॥

एभिर्नवभिश्च संयुक्तं ताम्बूलं कथ्यते शुभम् ॥"

उसी तरह नवधा भक्ति युक्त जो भगवच्चाह हो उसी की उपमा बीरी से है । अनेक स्थानों की लोक रीति सुना है कि सोहाग रात में (प्रथम मिलन के समय) स्त्री अपने पति को पान की बीरी देती है उस समय पति प्रायः बीरी युक्त पत्नी का हाथ पकड़ कर अपने अंक में खींच लेता है, उसी प्रकार चेतन के हृदय में जब चाह-भक्ति होती है तो स्वामी (भगवान्) उपासक का हाथ पकड़ कर अपने धाम में खींच लेते हैं और उसकी भावनानुसार उसे अपनी नित्य सेवा देते हैं ।

'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात् ।' (गी०)

पान खाने पर घर भर गमक उठता है वैसे ही जो भगवत्प्रेम-मतवाले हैं उनके सुयश रूपी सुगंध उठने पर तो फिर—

'तिहि वासते वासित होत दिगन्त है ।'

पान नायक नायिका दोनों खाते हैं वैसे चाह दोनों तरफ से होती है ।

'कै तोहि लागहि राम प्रिय कैतु राम प्रिय होहि ।'

इसी लक्ष से स्वामी श्री यामुनाचार्य जी अपने स्तोत्र आलमंदार में कहते हैं कि—

'तदहं त्वद्दत्ते न नाथवान् मद्दत्ते त्वं दयनीयवान् न च ।

विधिनिर्मितमेदन्वयं भगवन् पालय मास्म जीह्यः ॥'

प्राकृत रानी तो प्रथम अपना शृङ्गार दर्पणादि में देखकर तब शृङ्गारी को पुरस्कार देती है परन्तु भक्ति महारानी निराकारवत् है वे कैसे देखेंगी ? तथा पुरस्कार देंगी ? इसका समाधान करते हैं कि—

१३—रहे जो निहारिलहे

जो भक्त श्री भक्ति महारानी के निजकृत उपरोक्त शृङ्गारों को निहारते रहेंगे वे अपने आप ही श्री युगल सरकार को पुरस्कार में प्राप्त कर लेंगे । यदि कोई शंका करे कि निराकार भक्ति का शृङ्गार कैसा ? तो उसका समाधान यह होगा कि बिना उपयुक्त शृङ्गार (साधनों) के न तो भक्ति ही की शोभा है और न साकार भगवत्प्राप्ति ही । अतः साधक (मुमुक्षु) को चाहिये कि एकांत में बैठकर नित्य उपयुक्त साधनों को विचारे (निहारे-चिन्तन करे) कि मुझमें भगवद्भागवत् के प्रति श्रद्धा तो है ? मैं कथा निष्ठ तो हूँ ? अनर्थ मूलक सारा अभिमान मेरे हृदय से चला तो गया ? मुझमें मनन शीलता तथा दया तो है ? मैं सबसे नम्र तो रहता हूँ और मुझमें सर्व प्रकारेण एकमात्र श्री हरि की ही चाह तो है ? इस तरह सम्पूर्ण साधनों को बारम्बार निहार कर जिस-जिस साधन की त्रुटि हो उसे उसकी पूर्ति में तत्पर होकर उन्हें पूरा करते हुये भगवत्कृपा दृष्टि की आशा देखता रहे तो 'लहे' प्रभु को प्राप्त करे ।

१४—लाल प्यारी गाइये

वेद शास्त्र तथा 'लाल प्यारी'—युगल सरकार भी उपयुक्त साधन सम्पन्न उपासक का गुण गावें ।

'सकृत प्रणाम प्रणत यश वर्णत सुनत कहत फिरि गाव ।'

'राज समा रघुराज बखाने ।'

'अपने दास गुण निज मुख कहे ।'

क्योंकि भगवान् को तो भक्ति ही प्रिय है अतः भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं लौकिक गुणों से नहीं ।

व्याधस्या चरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्यका,
कुब्जायाः किमु नामरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नोवनम् ।
वंशं को विदुरस्य यादव—पतेरुग्रस्य किं पौरुषं,
भक्त्या तुष्यति केवलं न चगुणैर्भक्तिं प्रियो माधवः ॥

शंका—भक्ति देवी के शृङ्गार में सिन्दूर का वर्णन नहीं किया गया और वह भी नहीं बताया गया कि भक्ति देवी का भोजन क्या है ।

समाधान—सिन्दूर के न वर्णन का एक कारण तो ऊपर वर्णन हो चुका है और दूसरा कारण यह है कि स्त्रियाँ अपनी माँग में सिन्दूर स्वयं लगाती हैं या पति लगा देता है दूसरा नहीं इससे भक्ति के शृङ्गारों में प्रधान शृङ्गार सिन्दूर का नाम नहीं और भक्ति महारानी का भोजन तो भगवत्प्रेमाश्रु ही है जिस प्रकार भोजन में अनेक भेद होते हैं उसी प्रकार आँसुओं के भी अनेकों भेद होते हैं।

“आँसुन आँसुन भेद है ‘नीरद’ सोच के आँसू विचार के आँसू।”

विहार के आँसू प्रभाव के आँसू वियोग के आँसू संयोग के आँसू ॥

नारि के नीरज नैनन नीर भरे जिमि बंकिम तीर कटाक्ष के आँसू।

बज्र थके, जहाँ रेफ लगावत घाव लगावत प्रेम के आँसू ॥”

परन्तु :— ‘यह गुण साधन से नहीं होई।’

भगवत्प्रेमाश्रु किसी बाह्य साधन से नहीं होता। हृदय की प्रेम प्रवणता के कारण जो आँसू आता है वही श्री भक्ति महारानी का भोजन है नवधा भक्ति में प्रति भक्ति के साथ प्रेमाश्रु की प्रधानता है।

हिय फाटहु फूटहु नयन जरउ सोतनु केहि काम।

द्रवै श्रवै फून कै नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥

रहैन जल भरि पूरि तुलसी रघुवर सुयश सुनि।

तिन अँखियन में धूरि भरि भरि मूठी में लिये ॥

इसी से भक्तमाल का परम गुण यही है कि—

“जिनके न अस्त्रुपात पुलकित गात किहूँ तिनहूँ को भाव सिंधु वोरैसो छकाये हैं।”

जिस प्रकार अबोध बालक को माता-पिता की गोद में चढ़ने के लिये रोने के अतिरिक्त और कोई बल नहीं है, वैसे ही भक्त को भी भगवत्प्राप्त्यर्थ रुदन के अतिरिक्त अन्य बल नहीं है। श्रीरामचरित मानस में भक्ति के सभी अंगों का बड़ा सुन्दर सोदाहरण वर्णन है। अतः श्रीरामचरितमास से ही कुछ उदाहरण प्रेमाश्रु के दिये जाते हैं।

राम राम रघुनि रामते भक्ति नयन जल जात। जीह नाम जप लोचन नीर ॥

करत वण्डवत् मुनि उर लाये। प्रेम वारि दोउ जन अन्हवाये ॥

मम गुन गावत पुलक शरीरा। गेदगह गिरा नयन बह नीरा ॥

16003
श्री भक्तमाल दास छावनी देवा दस्त

लेखक की प्रकाशित रचनायें

	अप्राप्य
१. मानस पारायन पूजन पद्धति	"
२. प्रलापीषधि	"
३. सार्थ राम तारक प्रयोग विधि	"
४. मानस सिद्धान्त	"
५. जानकी चरण चामर सरला	"
६. धर्म रथ	"
७. जानकी चरण चामर रजःप्रच्छालिनी	"
८. वेदों में राम कथा	"
९. सत्योपाख्यान् अनुवाद	"
१०. वेदों में कृष्ण कथा	"
११. मंगल पचीशी	"
१२. सम्वाद बत्तीसी	४) रु०
१३. प्रेममयी मुद्रिका	अप्राप्य
१४. दो विभूतियाँ	४) रु०
१५. मानस शंका समाधान (बालकाण्ड)	४) रु०
१६. मनोहर चार	४) रु०
१७. मानस शंका समाधान (अयोध्याकण्ड)	४) रु०
१८. भक्ति का शृङ्गार	२.५०
१९. जयी जटायू	३) रु०
२०. मानस में पुष्प वृष्टि	३) रु०
२१. भागवत् में राम परत्व	३) रु०
२२. पहुनाई	२) रु०
२३. वर की खोज	३) रु०
२४. मानस में नारी दीक्षा और नारी निन्दा	७५ पै०
२५. राम चरित के तीन क्षेपक	२) रु०
२६. मानस में दो दान	७५ पै०
२७. सीता गुण गान	२) रु०
२८. श्री राम स्वभाव	५० पै०
२९. राम रण क्रीड़ा	२) रु०
३०. तुलसी कृत का पाठ कैसा हो	५० पै०
३१. मानस के सपेरे	२) रु०
३२. मानस चतुष्पाती कुशमाञ्जली	२५ पै०
३३. सती गीता	१) रु०
३४. जननी शतक	१) रु०